Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

औपनिषदिक नीति–तत्त्वों की वर्तमान में प्रासंगिकता

वर्तिका मिश्रा
शोध छात्रा,
एस०आर०एफ०, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज, उत्तर प्रदेश,भारत।

Article Info
Volume 3 Issue 6
Page Number: 01-07
Publication Issue :
November-December-2020

Article History
Accepted : 01 Nov 2020
Published : 07 Nov 2020

शोध–सार – नीतियाँ जीवन का आधार होती हैं, तथा उपनिषद् वाङ्मय ने सरस, सहज, उपदेशात्मक शैली के माध्यम से नीतियों को सम्पूर्ण मानव–जाति तक पहुँचाया है। उपनिषदों में अन्तर्निहित नीति–तत्व, सत्य, त्याग, दान, दया, अहिंसा, क्षमा, परोपकार इत्यादि सम्पूर्ण मानव जाति के श्रेय का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

मुख्य शब्द – उपनिषद्, सत्याचरण, नीति–तत्त्व, आमुष्मिक, स्वानुभूति, आध्यात्मिकता।

अनन्त अपौरूषेय वेदवाङ्मय का ज्ञानकाण्ड है **'उपनिषदें'**। वेदों के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों में जिस आध्यात्मिक जिज्ञासा, मनन, चिन्तन तथा स्वानुभूति की प्रक्रिया विकसित हुई, उसी का व्यवस्थित एवं परिपक्व स्वरूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है।

'उपनिषद्' सनातन नीति–तत्त्वों का मूल स्रोत हैं, उपनिषद् वैदिक ऋषि मनीषा का ही परिणाम नहीं है अपितु, प्राचीन ऋषियों की अनुभूति का फल है।

'उपनिषद्' पद की व्युत्पत्ति पर यदि विचार किया जाय तो **'उपनिषद्'** पद **उप+नि+सद्+क्विप्** अर्थात 'उप' और 'नि' उपसर्गपूर्वक सद् धातु से 'क्विप' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। उप अर्थात् 'समीप' 'नि' अर्थात् निश्चयपूर्वक एवं 'सद्' अर्थात् बैठना। इस प्रकार समुदित शब्दार्थ हुआ– "आत्मोपदेश अर्थात् तत्त्वज्ञान हेतु गुरू के समीप बैठना।" उद्भट दार्शनिक

शंकराचार्य ने 'उपनिषद्' को 'ब्रह्मविद्या' के पर्याय के रूप में स्वीकृत किया है। शंकराचार्य ने स्व–प्रणीत औपनिषदिक भाष्यों में 'सद्' धातु के त्रिविध अर्थों का प्रतिपादन किया है– 'विशरण', 'गति', 'अवसादन' **(षद्लृ विशरणगत्या–वसादनेषु)** जिसका तात्पर्य क्रमशः इस प्रकार है, 'विशरण' अर्थात् 'नाश होना' जिसमें संसार की मूलभूत अविद्या का नाश होता है।

'गति' अर्थात् 'प्राप्ति' जिसका अभिप्राय हुआ 'ब्रह्म की प्राप्ति'

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

'अवसादन' अर्थात् शिथिल होना जिसका अभिप्राय है, जिससे मनुष्य के बन्धन शिथिल या क्षीण होते हैं। 'उपनिषद्' पद की उपर्युक्त व्युत्पत्ति **'उपनिषद्'** पद के विवेचन के साथ–साथ उसके महात्म्य को भी स्पष्ट करती है।

उपनिषदों की संख्या के विषय में मतभेद है, उपनिषदों की वास्तविक संख्या कितनी है? यह विवेचन, विश्लेषण व गवेषणा का विषय है। साधारणतः उपनिषदों की संख्या 108 से लेकर 200 तक स्वीकार की जाती है। 'मुक्तिकोपनिषद्' में उपनिषदों की संख्या 108 बताई गई है।

"विदेहमुक्ताविच्छा चेद् अष्टोत्तरशतं पठ।"[1]

अड्यार लाइब्रेरी मद्रास से लगभग साठ (60) उपनिषदों का एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है, फलतः उपनिषदों की संख्या लगभग दो सौ (200) तक पहुँच जाती है।

शंकराचार्य ने दस उपनिषदों को प्रामाणिक मानते हुए उन पर पाण्डित्यपूर्ण भाष्य लिखे। 'मुक्तिकोपनिषद्' में भी 'दशोपनिषदं पठ्'[2] के द्वारा प्रामाणिक 'उपनिषदे' दस (10) ही मानी गई हैं तथा इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं–

ईश–केन–कठ–प्रश्न–मुण्ड–माण्डूक्य, तित्तिरः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।।[3]

इसके अतिरिक्त 'श्वेताश्वतर', 'कौषीतकि', तथा 'मैत्रायणी' भी प्राचीन उपनिषदों की श्रेणी में मान्य है।

अतः इन तीनों को लेकर प्राचीन उपनिषदों की संख्या कुल 'त्रयोदश' मानी जा सकती है। शंकराचार्य ने दश उपनिषदों पर भाष्यों की रचना की है तथा शेष तीन (3) के उद्धरण अपने भाष्यों में दिये हैं।

पाश्चात्य विचारक **श्री ह्यूम** इन तेरह (13) उपनिषदों को ही मुख्य रूप से स्वीकार करते हैं और अंग्रेजी में इनका अनुवाद ष्जैम जीपतजममद च्तपदबपचंस न्चदपींके ष्के नाम से किया है।

उपनिषद् दार्शनिक व धार्मिक विचारों से अनुस्यूत हैं। उपनिषद् वाङ्मय दार्शनिक व धार्मिक सिद्धान्तों का ही आधार नहीं रहा, अपितु उदात्त नैतिक–विचारों, अनर्घ मानवीय मूल्यों का सञ्चित कोष है। औपनिषदिक नीति तत्त्व, शाश्वत, हैं ये नैतिक नियम देशकाल व्यक्ति–सापेक्ष नहीं, अपितु सार्वकालिक व सर्वमान्य है।

"नीयन्ते संलभ्यन्ते उपाया ऐहिकामुष्मिकार्था अनया इति नीतिः।"

इस व्युत्पत्ति के आधार पर जीवनोपयोगी उपाय अथवा इहलौकिक एवं पारलौकिक वस्तुओं की प्राप्ति जिन कार्यों, व्यवहारों एवं आचरणों से होती है वह 'नीति' के रूप में जानी जाती है। वीरता, उदारता, सत्य, त्याग, क्षमा, शील, दया, परोपकार सन्तोष, अस्तेय, अहिंसा, इत्यादि नीति–तत्त्व जो कि उपनिषदों का मुख्य आधार है।

'ईशावास्योपनिषद्' में निहित नीति कि किसी के धन का लोभ मत करो–

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम।।[4]

अर्थात् विश्व में जो कुछ भी (चर तथा अचर) वस्तु है वह सब ईश्वर से व्याप्त है अतः उसका त्यागपूर्वक उपभोग करो, किसी दूसरे के धन का लोभ न करो।

उपर्युक्त मन्त्र लोभ रूपी मनोविकारों को त्यागने का नीतियुक्त उपदेश प्रदान करता है।

उपरिलिखित मन्त्र की ही भाँति ईशावास्योपनिषद् में उद्दिष्ट द्वितीय मन्त्र भी सम्पूर्ण मानव–जाति को निष्काम भाव से कर्म करते हुये तथा भगवत्प्रीत्यर्थ शास्त्र विहित अग्निहोत्रादि कर्म करने से व्यक्ति अशुभ कर्म में लिप्त नहीं होता। इस प्रकार का नैतिक विचार प्रतिपादित करता है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[5]

लौकिक जीवन में उपनिषदों में निहित नीति–तत्त्व कितने उपयोगी हैं, इसका प्रमाण **'बृहदारण्योकपनिषद्'** के मन्त्र में इस प्रकार उल्लिखित है।

अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन।[6]

उपर्युक्त मन्त्र धन को आध्यात्मिक उन्नति में बाधक मानते हुए अमृततत्त्व की प्राप्ति में बाधक माना है।

कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बद्ध **'कठोपनिषद्'**, 'पितृभक्ति', अतिथि–सत्कार, सदृश नीति तत्त्वों का प्रतिपादक उपनिषद् है।

इसी उपनिषद में 'दान' का औचित्य प्रतिपादित करते हुए नचिकेता अपने पिता वाजश्रवस को जीर्ण–शीर्ण गायों को दक्षिणा के रूप में देने से मना करते हुये उसके दुष्परिणाम के रूप में सचेत करते हैं–

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत्।।[7]

'कठोपनिषद्' में ही 'सत्याचरण' के महत्व को प्रतिपादित करते हुए नचिकेता अपने पिता से कहते हैं–

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथा परे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवा जायते पुनः।।[8]

भारतीय संस्कृति में निहित 'अतिथि–सत्कार' रूपी नीति को विशेष महत्व दिया गया है, जो कि चिरन्तन–परम्परा के रूप में स्वीकृत है।

आशाप्रतीक्षे संगतग्ँव सूनृतां च,
इष्टापूर्ते पुत्रपशूग्ँव् श्च सर्वान्।
एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो,
यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे।।[9]

अर्थात् जिसके घर में ब्राह्मण अतिथि बिना भोजन किये निवास करता है, उस मन्दबुद्धि पुरुष की आशा (अज्ञात पदार्थों की प्राप्ति की कामना) एवं प्रतीक्षा (ज्ञात पदार्थों की प्राप्ति की कामना) को संत (आशा एवं प्रतीक्षा के योग से प्राप्त होने वाले फल) एवं सत्यप्रिय वाणी (से उत्पन्न फल) को इष्ट (यागादि जन्मफल) एवं पूर्त (कूप निर्माण आदि सार्वजनिक हित–कार्यों से उत्पन्न फल) को तथा सम्पूर्ण पुत्रों और पशुओं को इन सब को नष्ट कर देता है।

'कठोपनिषद्' में वर्णित श्रेय–प्रेय अर्थात् विद्या और अविद्या का मार्ग नैतिक विवेचन से सम्बद्ध सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हे। इसके अतिरिक्त,

उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।[10]

उपर्युक्त मन्त्र में सम्पूर्ण मानव जाति को आत्मज्ञान की प्राप्ति का नैतिक सन्देश प्रदान किया गया है।

उपनिषदें आत्मज्ञान का निरूपण करने के साथ–साथ नैतिक कर्तव्यों का भी ज्ञानोपदेश प्रदान करती है, साथ ही उनके आचरण पर भी बल देती है,

'तैत्तिरीयोपनिषद्' में माता–पिता, गुरू व अतिथि में देवबुद्धि रखने का नीत्युपदेश प्रदान किया गया है। अर्थात् इन सबको ईश्वर की साक्षात मूर्ति समझकर पूर्ण आस्था श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ उनकी सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

मातृदेवो भव।पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।[11]

सत्यं वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।[12]

का नैतिक उपदेश अर्थात् सत्यभाषण करो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय में प्रमाद न करो, की जीवनोपयोगी शिक्षा का सन्देश 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में ही निहित है।

स्वाध्याय का वास्तविक तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी अध्ययन किया है, उसको अपने जीवनाचरण एवं व्यवहार में अनुकृत किया जाय, तभी इन नीति–तत्त्वों की सार्थकता सम्भव है।

इसी प्रकार **'छान्दोग्योपनिषत्'** में **'सत्यकाम–जाबालि'**[13] विषयक आख्यान भी 'सत्य' के नैतिक–विचार को प्रतिपादित करता है।

सामवेदीय उपनिषद् **'छान्दोग्योपनिषद्' 'सर्वं खल्विद ब्रह्म'**[14] तथा **'तत्त्वमसि'**[15] के उद्घोष द्वारा ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा सम्बन्धी विचार की आधारशिला के रूप में नैतिक कर्तव्यों पर बल देता है, तथा ब्रह्मज्ञान से पूर्व 'तत्त्वमसि' महावाक्य द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति को स्वयं को पहचानने का आदर्श प्रदान करता है।

क्योंकि ब्रह्मज्ञान अथवा आत्म–ज्ञान से पूर्व नीतियुक्त आचरणों की व्यवहार्यता वांछनीय है। औपनिषदिक नीति तत्त्व ज्ञान प्राप्ति के साथ–साथ आचरण पर बल देते हैं।

उपनिषदों में अन्तर्निहित नीति–तत्त्वों का पालन उपनिषदों के आमुष्मिक लक्ष्य अर्थात् 'ब्रह्म–ज्ञान' की प्राप्ति को सहज व सरल बनाता है। शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण के चौदहवें काण्ड के अन्तिम भाग के रूप में प्रसिद्ध तथा परिणाम में ही नहीं प्रत्युत तत्त्वज्ञान के प्रतिपादन में भी क्रमशः विशाल एवं गम्भीर उपनिषद् के रूप में प्रसिद्ध है।

'बृहदारण्यकोपनिषद्' के प्रत्येक अध्याय में आध्यात्मिक–ज्ञान के साथ–साथ नैतिक आचरणों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

इसी उपनिषद् के चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में कर्मफल की अवश्यंभाविता वर्णित की है, व इस विषय को तर्कपूर्ण रीति से प्रतिपादित किया गया है कि इस सृष्टि में प्रत्येक प्राणी को स्वकृत कर्मों के फल का भागी बनना पड़ता है। पुण्यकृत कर्मों से पुण्य की तथा पापकृत कर्मों से पापफल की प्राप्ति होती है।

यथाकारी यथाचारी भवति।.... पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति। पापः पापेन।[16]

इसी अध्याय में अन्तर–निहित **'याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी संवाद'** आत्मज्ञान की प्राप्ति के विषयों का उपदेश प्रदान करने के साथ–साथ नैतिक आचरणों की महत्ता पर भी व्यापक प्रकाश डालता है।

'बृहदारण्योकपनिषद्' के 'पंचम् अध्याय के द्वितीय ब्राह्मण में '**दम–दान–दया' – 'द–द–द'** का नीतिपरक विवेचन किया गया है।

यह आख्यान अत्यन्त रोचक है, व इस शोध–लेख की दृष्टि से नितान्त वांछनीय भी। आख्यान का विषय इस प्रकार है कि एक बार देवता, मनुष्य तथा असुर, सृष्टिसर्जक प्रजापति के समीप पहुँचे व उनसे ज्ञानोपदेश हेतु निवेदन किया। तदनन्तर प्रजापति ने तीन बार 'द', 'द', 'द' इस प्रकार उच्चारण किया।

तथा देवों ने **'द'** का अभिप्राय **'दाम्यत्'** अर्थात् **'दमन' – 'इन्द्रियनिग्रह करो',** अर्थात् तुम लोग स्वभाव से अदान्त हो, इसलिए दमनशील बनो।

'दाम्यत' अदान्ता यूयं स्वभावतः अतो दान्ता भवत्।

मनुष्यों ने **'द'** का अभिधेयार्थ **'दत्त'** अर्थात् **'दान करो'**। तुम सब स्वभावतः लोभी हो इसलिए 'यथाशक्ति संविभाग करो–दान करो।

'दत्त इति'..... स्वभावतो लुब्धा–यूयमतो यथाशक्ति संविभजत दत्त'।

असुरो **'द'** अर्थ **'दयध्वम्'** अर्थात् **'दया करो 'द' 'दयध्वम्'** इति।

इस प्रकार तीनों वर्गों ने 'दम', 'दान' व 'दया' इस प्रकार के नीति–तत्वों को ग्रहण किया, जो आज भी सम्पूर्ण मानव–जाति के लिये कल्याणकारी व श्रेयस्कर मार्ग है।

इसी अध्याय में उपर्युक्त आख्यान के आगे की पंक्तियों में यह रोचक आख्यान भी वर्णित है कि, प्रजापति के अनुशासन का मेघगर्जनारूपी दैवी वाक् आज भी **'द', 'द', 'द'** अर्थात् **'दमन करो', 'दान करो',** व **'दया करो',** इन तीनों नैतिक मूल्यों का उद्घोष करती है।

तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदति स्नयित्नुर्द द द इति दाम्यत, दत्त, दयध्वम् इति तदेतत् त्रय शिक्षेछमं दानं दयामिति।[16]

'असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्येर्माऽमृतं गमय।[18]

उपर्युक्त उपदेश 'बृहदारण्योपनिषद्' में सन्निविष्ट सर्वोत्तम उपदेशों में से एक है। हे परमात्मन्। हमें असत्य से सत्य की ओर अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलें।

उपर्युक्त पंक्ति उपनिषदों में निहित आशावादी उपदेशों की आदर्श बानगी है।

सामवेदीय उपनिषद् **'केन उपनिषद'** का उपनिषद् वाङ्मय में विशिष्ट स्थान है। अपने प्रारम्भिक पद **'केनोषितं पतति'** के कारण 'केन उपनिषद्' व अपनी शाखा के नाम पर **'तवलकार उपनिषद्'** के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें मात्र चार खण्ड हैं, किन्तु परिमाण में अल्प होने पर भी गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन साथ–साथ इसमें नैतिक तत्वों का भी विशद विवेचन प्राप्त होता है।

'विद्यया विन्दतेऽमृतम्'[19] अर्थात् विद्या से अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

ज्ञान नीतियों का आधार है। तथा उपनिषद् ज्ञान–काण्ड के सर्वोच्च प्रतिपादक हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अन्य भारतीय दर्शनों की भाँति उपनिषद् में बन्धन एवं मोक्ष का विचार निहित है, तथा मोक्ष को चरम् पुरूषार्थ के रूप में स्वीकृत किया गया है, किन्तु मोक्ष की प्राप्ति से पूर्व धर्म, अर्थ एवं काम त्रिविध पुरूषार्थों में नीतियुक्त आचरण की व्यवहार्यता अपरिहार्य है।

उपनिषद् दर्शन में जगत को सत्य माना गया है, क्योंकि जगत ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, ब्रह्म ही जगत की उत्पत्ति का कारण है, फलतः इस जगत की नैतिक–व्यवस्था में नीति युक्त कर्तव्य पालन करने की शिक्षा देता है, **'उपनिषद दर्शन'**।

'औपनिषदिक दर्शन जगत से पलायन की शिक्षा नहीं देता है।[20]

वर्तमान युग के सापेक्ष यदि औपनिषिदिक दर्शन में निहित नीतियुक्त उपदेशों **'सत्य वद्', धर्मं चर',** इत्यादि नैतिक मूल्यों का पालन किया जाये तो अवश्य ही सम्पूर्ण सृष्टि का कल्याण होगा। उपनिषदों में निहित तत्वों ने सदैव से ही सम्पूर्ण मानव–जाति का मार्गदर्शन किया है।

उपनिषदों की प्रासंगिकता व महत्ता के विषय में पाश्चात्य दार्शनिक शोपेनहावर ने कहा है, ष्प्द जीम ीवसम ूवतसक जीमतम पे दव ेजनकल ेव इमदमपिबपंस ंदक ेव मसमअंजपदह ें जींज व िजीम न्चदपेंकण प्ज ीं इममद जीम ेवसंबम व िउल सपमिए पज ूपसस इम जीम ेवसंबम व िउल कमंजीए[21]ण

प्रो0 रानाडे के शब्दों में **''उपनिषद् हमें एक ऐसी दृष्टि दे सकते हैं, जो मानव की दार्शनिक, वैज्ञानिक और धार्मिक माँगों की एक ही साथ पूर्ति कर सके।''**[22]

फलतः यह कहा जा सकता है कि, सम्पूर्ण उपनिषद् वाङ्मय **'आत्मानं विद्धि'** का सदुपदेश प्रदान करते हुये सम्पूर्ण मानव–जाति को श्रेयस्कर व नीतिपूर्ण जीवन–जीने की शिक्षा प्रदान करते हुये इस भव–बन्धन से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मुक्ति कोपनिषद् (1.29)
2. वही (1.27)
3. वही (1.30)
4. ईशावास्योपनिषद् मन्त्र सं0 1
5. वही मन्त्र सं0 2
6. बृहदारण्यकोपनिषद् 4.5.**3**
7. कठोपनिषद् (1.1.3)
8. वही (1.1.6)
9. वही (1.1.8)
10. वही (1.3.14)

11. तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षा वल्ली अनुवाद सं0–11.2
12. वही 11.1
13. छान्दोग्योपनिषत् चतुर्थ अध्याय, चतुर्थ खण्ड
14. वही 3.14.1
15. वही 6.8.7
16. बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.5
17. वही 5.2.1–3
18. वही 1.3.28
19. केन उपनिषद्
20. भारतीय दर्शन की विशेषताएँ H.P. Sinha
21. History of Indian philosophy - Vol. 1 P.-40 Dr. Das Gupta.
22. Constructive Surrey of Upnisadic Philosophy - Ramchandra Dattarya Ranade.